शिञ्जिनी

(काव्य संग्रह)

शिवबहादुर सिंह

सन १९५३ ई०]

[मूल्य १॥=)

मिलने का पताः—

प्रकाशक—
शम्भू प्रकाशन,
धनीपुर (लालगंज), रायबरेली

मुद्रक
भारत प्रेस
सदर बजार, लखनऊ

दो शब्द

सुना था किसी को प्रश्रय देकर निर्वाह करना महान् आदर्श है चाहे वह विष-वृक्ष ही क्यों न हो। जीवन में प्रेम पहले एक साधारण शब्द के रूप में आया फिर समस्या बना और अन्त में संस्कार हो गया।

शिञ्जिनी के गीत मेरे सुख-दुख के कल्पवृक्ष हैं जो यथासमय मेरी वाणी को नये उत्साह और नयी प्रेरणा के फल देते रहे हैं। समाजगत उनकी क्या उपयोगिता है, मैं कह नहीं सकता। आत्माभिव्यंजन ही प्रमुख दृष्टिकोण रहा है।

हाँ, पालतू और जंगली कबूतर में केवल इतना ही तो अन्तर है कि वह जंगली कबूतर के साथ-साथ उड़कर भी अपने घर आने का ज्ञान नहीं खोता। मैंने भी कल्पना लोक की सुख-श्री बटोर लाने का प्रयत्न किया है किन्तु साथ ही धरती की सत्य और कठोर बाहों पर नीड़ सृजन करना नहीं भूला हूँ।

प्रकृति का नीरव सम्मोहन मुझे बचपन से आश्चर्य में डुबाता रहा है। कदाचित इसी कारण भावनाओं की अभिव्यंजना का माध्यम भी अनन्त में बिखरा हुआ प्रकृति का स्वरूप ही है। किन्तु भावों में मानसिक संघर्ष और हार्दिकता का ही आधिक्य है।

भावात्मक सुख और अभावात्मक दुख की विप्लवकारिणी अनुभूतियों के संघर्षातिरेक में बहुत सम्भव था मैं निराशावादी हो जाता

किन्तु मेरे स्वभाव और जीवन की परिस्थितियों ने ऐसा नहीं होने दिया। यद्यपि कविताओं में बौद्धिकता नहीं आ सकी।

मेरे विषय में और अधिक स्पष्ट गीत स्वयं बतलायेंगे। शिञ्जिनी की सौन्दर्य-वृद्धि में अनेक प्रियजनों का सम्बल प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैं उनका चिर कृतज्ञ हूं। विशेषतया इतने स्वल्प समय में मुख पृष्ठ को सुसज्जित करनेवाले श्री जगदीशनारायणजी कलाकार ने जिस आत्मीयता का परिचय दिया है उसके लिए केवल धन्यवाद···मेरी धृष्टता ही होगी। विद्या मन्दिर हमीरपुर की शुभ कामनाओं को भी भूलना मेरे बस की बात नहीं।

अन्त में अपनी ही हृदय साधना से—देख!·········तेरी शिञ्जिनी की छाया पृथ्वी से उतर कर जल की सतह पर कैसे लहरा रही है।
बता!···यह ऊर्ध्वमुखी होकर आकाश से क्या पूछती है?

हमीरपुर
गुरु पूर्णिमा
सं० २०१० वि०

शिवबहादुर सिंह

'शिञ्जिनी' के गीत

'शिञ्जिनी' के गीत मैंने पांडुलिपि में पढ़े। ये सब के सब विरह-गीत हैं, इनमें वियोग की एकतान भावना भरी हुई है। इन गीतों का अलग-अलग शीर्षक देकर लिखने या पढ़ने में कोई विशेषता नहीं है। इन्हें धारावाहिक रूप में पढ़ने पर ही इनका सौंदर्य प्रत्यक्ष होता है।

काव्य में विरह-भावना कोई नई वस्तु नहीं है। नवीनता आती है नई कल्पनाओं और नए रूप-चित्रों द्वारा। उनकी इस पुस्तक में पर्याप्त मात्रा है। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि कवि में अच्छी उद्भावना शक्ति है जिसके कारण इन गीतों में पूरी काव्यात्मकता आ गई है।

प्रश्न यह शेष रह जाता है कि क्या काव्यात्मकता ही सब कुछ है? क्या उसके भी कोई प्रकार नहीं हो सकते और क्या युग विशेष की सामाजिक परिस्थिति में उसकी भी उपयोगिता या अनुपयोगिता घटती बढ़ती नहीं? क्या वियोग-भावना के कई मनोवैज्ञानिक स्तर नहीं हुआ करते?

इन्हीं प्रश्नों की पृष्ठ भूमि पर 'शिंजिनी' के स्वरों की परीक्षा की जा सकती है। उत्तर में मुझे इतना ही निवेदन करना है 'शिंजिनी' एक नवीन और उदीयमान कवि की कृति है। यह उसके प्रथम यौवन की

पहली प्रतिक्रिया है। इसमें दो बातें स्वभावतः आ गई हैं। एक तो यत्र-तत्र इंद्रिय-संवेदनों का आधिक्य, जैसे नीचे लिखी पंक्तियों में :—

नुकीले नयनों में नादान अनेकों तिरछे तीर भरे।

अथवा

शरबती ओठों पर मुस्कान प्यार के निर्झर फूट झरे।

अथवा

मूक शीशे के हृदय पर
टूटती किरणें बिखर कर
एक सूरत बन रही है
हर घड़ी मन में उमर भर।

अथवा—

सुलगे प्राणों में आग जली,
नभ का उर छेद चली बिजली।
या वस्त्र बिना गोरी नारी
झट लाज भरी डुबकी मारी।

दूसरे, इन गीतोंमें यत्र-तत्र विषाद की गहरी रेखायें कवि की भावनाओं में एक अनीप्सित जड़ता ला देती हैं—

यथा—

कुम्हला गए तेरे बहुत दिन बन्द कारागार में।
क्या याद होगा घर तुझे इस विश्व पारावार में;
नियति के कर मुक्ति भी दें तो कहाँ तु जायगा अब !

इन गीतों में कवि का जीवन-दर्शन भी अस्पष्ट और अनिश्चियात्मक है। यह निश्चय नहीं होता कि कवि की ये व्यक्तिगत और ऐकान्तिक भावनाएँ उसे 'महादेवी' जी की भांति किसी उच्चतर आध्यात्मिक साधना की ओर ले जाएँगी, अथवा ये उसे निराशा और निष्क्रियता के गर्त में ही गिरी रहने देंगी।

अधिकतर पदों में कवि की मांगलिक भावनाएँ उभरती हुई दिखाई देती हैं।

जैसे—

हर गान मेरा प्राण की पहचान है
हर अश्रु मेरा प्यार का ईमान है।
जब मेरु सा तन बँध गया लघु श्वास में
प्रिय प्यार का मन भी बँधा विश्वास में;
है बन्द बिजली बादलों की बाँह में
स्वर सात बन्दी एक कवि की आह में।

यदि ये सातों स्वर कवि की आह से निकल कर सचमुच हिन्दी काव्याकाश को अपनी मनोरम ध्वनियों से आच्छादित कर दें, तो यह बड़े सौभाग्य की बात होगी।

एक ओर तो छेड़ रही हैं मुझको दुर्बल आहें,
और दूसरी ओर बुलाती नव प्रकाश की बाहें,
....
मौत की दुनिया में भी प्यार, मौत तुम खोना नहीं कभी।

ऐसी पंक्तियोंको पढ़ने पर 'शिंजिनी' के कवि का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है। बहुत कुछ इस बात पर अवलंबित होगा कि आज के सामाजिक जीवन में उसकी प्रतिभा किन क्षेत्रोंसे अपना संबल लेती है। एक सभावना यह है कि वह अधिकाधिक अंतर्मुख होती जाय और अंततः दिवा स्वप्नोंका सहारा लेकर स्वप्नवादी सृष्टियाँ करने लगे। दूसरी संभावना यह है कि वह एक आवर्णीत मनःस्थिति में पहुंच कर प्रयोगवादी रचनाओं का पल्ला पकड़ ले। तीसरी और श्रेष्ठतम संभावना यह है कि वह सामाजिक और आध्यात्मिक संघर्षों और आदर्शों का प्रशस्त पथ ग्रहण कर क्रमशः अधिक संतुलित और प्रेरणाप्रद बन जाय। प्रतिभा प्रत्येक अवस्था में रहेगी, पर उसके प्रयोगों में अंतर आ जायगा। आज के युग में यह बहुत बड़ा अंतर है, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रतिभा ही पर्याप्त नहीं होती,

उसका मनोवैज्ञानिक परिष्कार भी अपेक्षित होता है। कवि का व्यक्तित्व उसकी रचना पर अपनी छाप छोड़ता है, अतएव अच्छी रचना के लिए व्यक्तित्वका सामाजिक संस्कार अत्यंत आवश्यक होता है।

हम आशा करते हैं कि 'शिंजिनी' का कवि अपनी प्रतिभाके मणि, मानिक और मुक्ता को अहि, गिरि और गज की प्राकृत भूमियों से हटाकर नृप, किरीट और तरुणी के प्रसाधन योग्य बना सकेगा। तभी गोस्वामी जी की ये पंक्तियाँ चरितार्थ होंगीः—

मनि मानिक मुकता छवि जैसी
अहि, गिरि, गज सिर सोह न तैसी
नृप किरीट तरुनी तनु पाई
लहहिं सकल सोभा अधिकाई।

आज के युग में (सच पूछिए तो सभी युगों में) प्रतिभा की वास्तविक सार्थकता इसी में है और रहेगी।

सागर विश्वविद्यालय
सागर
१, अगस्त १९५३

नन्ददुलारे बाजपेयी
(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग)

शिञ्जिनी



'कवि'

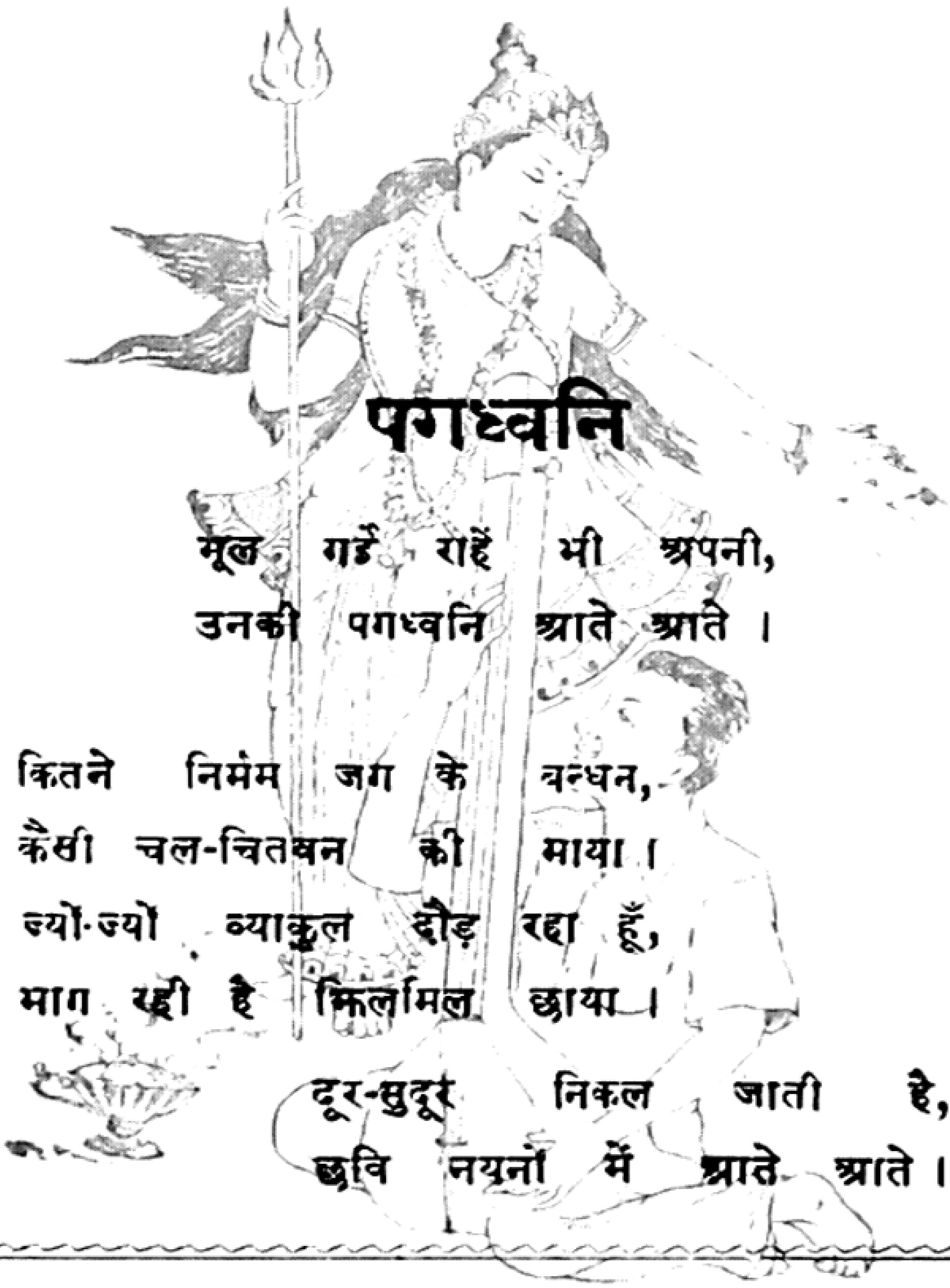
समर्पण

प्रिय छवि दिखलाने को,
जो वन वन आई दर्पण।
उन सभी विगत घड़ियों को
स्वर भरी 'शिंजिनी' अर्पण।

—शिवबहादुर सिंह

With them the seed of wisdom did I sow,
And with my own hand laboured it to grow;
And this was all the Harvest that I reap'd—
"I came like water, and like wind I go"

—*Omar Khayyam*



पगध्वनि

भूल गई राहें भी अपनी,
उनकी पगध्वनि आते आते।

कितने निर्मम जग के बन्धन,
कैसी चल-चितवन की माया।
ज्यों-ज्यों व्याकुल दौड़ रहा हूँ,
भाग रही है झिलमिल छाया।
दूर-सुदूर निकल जाती है,
छवि नयनों में आते आते।

कोमल पंखुड़ियों के पथ से,
फिसल-फिसल कर मन चलता था।
रंग विरंगे सपनों से जग,
एक चावला भ्रमि कहता था—

'जीवन बीत जाय यह मेरा,
कलि तेरे गुन गाते गाते।'

मृदु मुस्कानों से ही जग में,
भर जाता शशि शीतल धारा।
किंतु न सोचा रजनी ने कुछ
थक जाता होगा बेचारा।

दूर देश से यह अमृत-घट,
वसुधा-तल तक लाते लाते।

उस नीले अम्बर पट पीछे,
होगा कैसा देश मनोहर।
शून्य गगन के शून्य कक्ष से,
एक मूक जिज्ञासा लेकर।

ये बुझते दीपक यौवन के,
क्या कह जाते, जाते जाते।

उस विशाल अम्बर की भी क्या,
रूठ गई नव तरुणाई है ?
जिससे टकरा कर अवनी पर,
ध्वनि, प्रतिध्वनि बनकर आई है।

युग के युग ही बीत चले हैं,
यों ही ठोकर खाते खाते।

थाम कपोलों को युग कर से,
नत मस्तक क्या सोच रहा हूँ।
दृग-अम्बुधि में डूब चुकी है,
अपनी तरणी खोज रहा हूँ।

छूट गई पतवार हाथ से,
आज किनारा पाते पाते।



नील साड़ी

उठो नाथ देखो अरे नील साड़ी,
गगन की गगन पर जली जा रही है।

दिशायें तिमिर - धार में डूबती हैं,
नखत तिलमिलाये भगे जा रहे हैं।
निशा के हृदय की विकल आह सुनकर,
धरा - मीत मानव जगे जा रहे हैं।

प्रथम अर्चना भी उषा-कामिनी की,
किसी वञ्चना से छली जा रही है।

दिवस की थकी आँख में आँख भरने,
बुलाता अरे कौन ? यह रात प्यारी।
गगन - सेज का प्रिय वही था सितारा,
अभी छोड़कर जो भगा चित्रसारी।
इसी मृत्यु औ, मर्तिका आवरण में,
अमर साँस निशि-दिन गली जा रही है।

प्रलय की किसी रात का एक दीपक,
यही प्राण बनकर मुझे भी मिला है।
जला तो बहुत किन्तु फिर भी अभी तक,
न बुझ ही सका है, न गुल ही खिला है।
बचाओ, बचाओ, अमर ज्योति मेरी,
किसी एक लौ से मिली जा रही है।

मिली बाढ़ कितनी नयन - सागरों को,
उदधि थाह लेने चला आ रहा है।
उठी पीर ऐसी भयानक हृदय में,
बचाओ हिमालय गिरा जा रहा है।
सँभालो ! सँभालो !! गगन देवताओ,
धरा की धुरी भी हिली जा रही है।

न अपराध जीवन कभी कर सका जो,
वही मौत दे आज आदेश सोई।
इसी चिन्तना में चली घाट तक, पर,
कफ़न से लिपट कर बहुत लाश रोई।

कि जिनके चरण पूज्य, सर पर उन्हीं के,
यह अर्थी हमारी चली जा रही है।



अधखिली आँख

किसी अधखिली आँख की ज्योति पीकर,
अरी डाल तेरा खिला फूल होगा।

किसी बूँद की ज़िन्दगी सोचता हूँ,
नदी की लहर में कभी मौन सोई।
कभ हँस पड़ी, चाँदनी से गले मिल,
कभी बादलों का हृदय छेद रोई।
मगर अन्त में बूँद, शृङ्गार तेरा,
नदी की नियति पर बँधा कूल होगा।

लिया तोड़ किसने, अरे फूल ! वन का,
हुआ कुञ्ज सूना, लता रो रही है।
समाधान स्वर में कहा कोकिला ने—
विजय मृत्यु की तो सदा से रही है।
यही बात केवल नहीं जानता था,
नयन-फूल मेरा, हृदय-शूल होगा।

यही रात-दिन ही स्वयं नष्ट होकर,
बने जा रहे हैं जगत की कहानी।
विगत की दशा पर जरा सोचती है,
भला लौटकर कब मिलेगी जवानी।
इसी भाँति मैं सोचता था किसी दिन,
विरह याद होगी, मिलन भूल होगा।

मगर देखता हूँ सुबह को अचानक,
किरन की कला से कली खिल गई है।
निरन्तर बढ़ी जा रही उस नदी को,
अमर राशि जल-सिन्धु की मिल गई है।
इसी भाँति मैं सोचता हूँ किसी दिन,
धरा वायु होगी, गगन धूल होगा।

सुनहले स्वप्न

सुनहले सपन की रजत - घाटियों से,
विसुध तन, विसुध मन, चला आ रहा हूँ।

सपन में, धुनी सेज पर सो रहे थे,
जलन, नींद की धार में धो रहे थे।
रुपहली चरण - धूलि चूमी अधर ने,
सरल श्याम आँचल अमर ज्योति करने।
अमृत दान करने चला पंथ को मैं,
मगर पंथ ही से छला जा रहा हूँ।

लहू उँगलियों आ रहा कह, मचल कर—
कि नखून लाली बनूँगा निकल कर।
रुको देवता मूक मन-संतरण पर,
सभी रक्त-कण तुल गये हैं वरण पर।
सजा लूँ तुम्हारे चरण आज जी भर,
मुहूरत उठाये चला आ रहा हूँ।

रहे देखते सब गगन के नखत, डर,
लगी नित्य फाँसी नयन के तखत पर।
मरे अश्रु हर बार मन्सूर बन कर,
यही सुख मिला है मुझे दूर रह कर।
भला दूर से भी कहाँ दूर जाऊँ—
यहाँ दूर रह कर मिला जा रहा हूँ।

अगर नींद उनसे कहानी कहेगी,
हृदय में कसक बन निशानी रहेगी।
बढ़ाये युगल कर करेंगे इशारा,
कहाँ है नदी तट, कहाँ वारिधारा?
बँधी है अरे, आग कितनी प्रणय में,
न यह गाँठ खुलती, जला जा रहा हूँ।

जीवन-रहस्य

जिस तरह यह किरन - नूपुर - किंकिणी सुन,
शान्त सर में खिल रहे जलजात हैं।
उस तरह जीवन तुम्हारे भेद की बातें,
अँधेरे में पड़ी अज्ञात हैं।

तारकों की फुलझड़ी में,
कालिमा गुमसुम पड़ी है।
नील - नीलम - उर गगन में,
चाँद की प्रतिमा जड़ी है।

जिस तरह उस चाँद के विघटन - बढ़न की,
पुस्तिका को लिख रहे दिन - रात हैं।
उस तरह जीवन तुम्हारे भेद की बातें,
अँधेरे में पड़ी अज्ञात हैं।

प्राण में रस बूंद भर कर,
साध की बदली घिरी है।
कसक वाले आसमाँ से,
याद की बिजली गिरी है।
जिस तरह उस याद की धुंधली लकीरों,
से लिपट कर सो रहे आघात हैं।
उस तरह जीवन तुम्हारे भेद की बातें,
अँधेरे में पड़ी अज्ञात हैं।

चाँद लाली को अधर से,
देख, प्रियतम! पी रहा है।
और सूरज कालिमा का,
खून पीकर जी रहा है।
जिस तरह उस कालिमा औ, लालिमा के,
प्राण लेकर पल रहे दिन - रात हैं।
उस तरह जीवन तुम्हारे भेद की बातें,
अँधेरे में पड़ी अज्ञात हैं।

नये अध्याय

मैं पूजा का थाल सँभालूँ,
तुम पूजा की छवि निहार लो।

एक कली चटकी गुलाब की,
मारुत से यों ही टकरा कर।
मैं समझा तुम मुझ से बोले,
तरु तक दौड़ा शीश झुकाकर।

दृढ़ सम्बन्ध तुम्हारे मेरे,
ज्यों जल-थल-नभ, चितवन घेरे,
मैं अपनी वीणा से खेलूँ,
तुम तन-मन की सुधि बिसार लो ॥

मदमाते पिक - पुञ्ज मञ्जरी,
मलय चूमता हर डाली को।
भय है इस विस्मृति वेला में,
नींद न आ जाये माली को।
आओ हम तुम सृष्टि सँभालें,
कुछ अध्याय नये लिख डालें,
मैं काँटों की डाल झुकाऊँ,
तुम कलियों के सिर उतार लो।

कनक-किरन सा तम में मिल जब,
पतझर नव शरीर पाता है।
रागारुण चम्पक कलियों के,
मधुऋतु नये चीर लाता है।
आओ सीखें हृदय देखना,
अतल सिन्धु में नाव फेंकना,
डाँड़ फेंक, मैं रस्सी काटूँ,
चीत्कार प्रिय तुम सँभार लो।

चित्र-रेखा

कामिनी कंचन कुसुम किशोर,
बाहु में फागुन भरे खड़ी।

एक कर पकड़े तरु की डाल,
दूसरा पूछ रहा बेहाल।
वक्ष पर बिखरे दीन मलीन,
विकच काले केशों का हाल।
मानिनी मादक मदन-हिलोर,
नयन में पाहुन भरे खड़ी।

स्वेद की बूँदें तन झकझोर,
टपकतीं आनन से रसबोर।
अञ्जुली भर भर काले मेघ,
धो रहे जैसे चाँद किशोर।
राागिनी रँग में राग विभोर,
प्यार की पहिली पीर जड़ी।

माँग मे पागल सी मुस्कान,
पाँव में पायल के दुख गान।
सिसकियों की डोली में बैठ,
नयन में उतरे नेह • निशान।
सावनी चितवन चकित चकोर,
श्याम पलकों में लाज गड़ी।

मूक चिन्ता में सुध-बुध भूल,
अँगूठे उठा रहे हैं धूल।
अचानक कसे पवन ने गात,
अधर पर खिले हँसी के फूल।
भामिनी भावुक बोल अमोल।
विहँस मन छम छम दौड़ पड़ी।

किशोरी

सिहरती शिशिर समीरण सरिस शीश पर सुवरन कलस धरे,
नुकीले नयनों में नादान अनेकों तिरछे तीर भरे।
सोहती वे सिंदूरी मांग,
श्याम अलकों के आरो पार।
नील यमुना के बीचो बीच,
मिल रही ज्यों गंगा की धार।
शरबती ओठो पर मुस्कान प्यार के निर्झर फूट झरे।

पकड़ हाथों से रेशम डोर,
झूलती झूला भरी हुलास ।
झकोरे आँचल लेते खींच,
झूमते धरती औ आकाश ।
रसीले मन के चंचल भाव झूम झुक झुक कर गिर परे ।

पुतलियाँ गातीं रिम झिम गीत,
फूल पाती सी झरती बात ।
निकल आयी यौवन की धूप,
बुलाती पिय को फैले हाथ ।
बिता ले जीवन के दो याम, बांह की शीतल छांह तरे ।

देख मतवाले काले मेघ,
मोर करते पल पल में शोर ।
वियोगिन निशि-दिन सौ सौ बार,
उंगलियों के गिनती है पोर ।
जा रहे मन के सपने दूर, हो रहे दिल के घाव हरे ।

प्रकाश की बाहें

याद की राहों में रख चरण, मीत तुम रोना नहीं कभी।

कभी कह गई रात, सूर्य तुम मेरी देह न छूना,
तुम काले हो गये कहीं तो सब जग होगा सूना।
वही बात देखो प्रिय अब तक सूरज रोज़ निभाता,
और रात से दूर कहीं जा सूनी सेज बिछाता।
स्वप्न की दुनियां में भी पास मीत तुम होना नहीं कभी।

देख चमकती बिजली उर में घन आँसू भर लाये,
हम दुनिया की प्यास बुझाते खुद अंगार छिपाये।
इसी धरा के लिए चाँद औ सूरज देह जलाते,
किंतु कभी भी आसमान से उतर न देखो पाते।
हार की दुनिया फूले फले, जीत तुम होना नहीं कभी।

कलियोंकी अंगड़ाई भर-भर सुबह चमन जब जागा,
ओठों ने जो शब्द बनाये रोज़ पवन ले भागा।
ठीक नहीं हर बात प्राण की कहीं मीत तक जाये,
अतः शब्द को बांध बांध कर मैंने गीत बनाये।
गीत के अंग अंग में पीर, पीर तुम खोना नहीं कभी।

एक ओर तो छेड़ रही हैं मुझको दुर्बल आहें,
और दूसरी ओर बुलातीं नव प्रकाश की बाहें।
इस जीवन के लिए न साथी तुम रो रो पछताना,
इसी तरह जी जी भर भर कर हमें तुम्हें है आना।
मौत की दुनियां में भी प्यार, मौत तुम खोना नहीं कभी।

साधना

आधी रात कटी सपनों में,
आधी सपनों के चिन्तन में।

द्वार खोल पलकों के भीतर,
प्रिय तुम मन में ऐसे आये।
जैसे कोई तस्कर घर में,
छिप छिप अपने पाँव बढ़ाये।
दृष्टि पड़ी जब मेरी तुम पर,
लौ-से काँपे क्यों थर थर थर।

कुछ कुछ बोल टँगे अधरों में,
कुछ लोचन में कुछ पिय ! मन में।

तुम कहते हो इन गीतों से,
मेरे कोमल प्राण न खींचो।
मैं कहता हूँ प्रिय नयनों से,
सूखे उर के घाव न सींचो।
मन में मन की ममता भर लो,
या गीतों का उद्‌गम हर लो।

वरना माटी तक गायेगी,
जब न रहेगी वाणी तन में।

सब अपराध क्षमा कर दूँ मैं,
यदि अपराधी ! इतना कह दो।
'अपना समझ तुम्हें मारा है,
मौन मरन या फिर जीवन दो।'
माना मुझसे अब अनबन है,
पर मेरा मन भी तो मन है।

कुछ मिलना मिल लो अनबन में,
कुछ जीवन कुछ मौन मरन में।

मृगतृष्णा

अश्रु यह कैसे हरेंगे पीर मन की।

जो जुदाई से स्वयं ही रो रहे हैं—
अश्रु यह कैसे हरेंगे पीर मन की।

क्या मदद माँगू सभी की जीभ पर ताले पड़े हैं,
देख लो नभ के हृदय में अनगिनित छाले पड़े हैं।

बिजलियाँ जिसका निरन्तर कर रहीं छलनी
कलेजा, आस क्या असहाय घन की।

प्यार का अतिशय ऋणी हूँ जो नये नित पथ बनाता,
औ सघन अँधियार में भी ज्योति का जीवन बुलाता।

किन्तु जिसको तम निगलता एक क्षण में
क्या करूँ आशा किरण की।

यह पवन प्यारा लगे यदि प्रिय चरण की धूल लाये,
गीत वह है मीत मन का जो हृदय की भूल गाये।

किन्तु देंगे साथ कब तक मीत जो मनसे—
निकलकर माँगते स्वर-वीन तनकी।



अभियोगी

जिसे तुम कहते मेरी भूल,
वही चिर संचित जीवन-गान।

न आता करने से प्रिय प्यार,
हुआ करता यों ही अनजान।
सुभग जीवन का लक्षित सार,
पलक से पल भर की पहिचान।

चेतना सुधि के डोरे डाल,
बनाती युग - युग का मेहमान।

कहो मत इसको मेरी हार,
जीत है करुण आत्म विच्छेद।
मिलन तो उस रेखा का नाम,
जहाँ से फिर होता विच्छेद।

अकेली रह जाती यह रात,
दिवस के होते ही अवसान।

लाँघ गुरु तन का कारागार,
हो गया मन जब तन से दूर।
रह गया तन यों ही लाचार,
बताओ किसका कौन कसूर।

सुना दो निर्णय के दो बोल,
खड़ा अभियोगी सीना तान।

पी चुका हूँ गीतों के बोल,
एक स्वर में खोया संगीत।
पड़ा रहने दो अब चुपचाप,
जगाओ मत हे! मुझे अतीत।

बड़ी मुश्किल से आँखें मूँद,
प्रलय में सोया है तूफान।

आकाश कुसुम

मैं लोभी आकाश कुसुम का,
नभ तक उड़ना सीख रहा हूँ।

क्या कर लेगा अम्बर मेरा,
क्या कर लेंगे प्रहरी तारे।
नींद सुहागिन के गुन गाऊँ,
जाग रहीं संग साँझ सकारे।
मुझको सोच दूर का वासी।
उड़ उड़ आते गीत बिचारे।

गीतों के बन्धन में जग का,
तन-मन भरना सीख रहा हूँ।

मृदु चुम्बन करने धरती का,
कितना झुका गगन बेचारा।
कितना भार ढो चुकी वसुधा,
सोच रहा साहस का हारा।
उसी समय निर्मम कह प्रिय को,
एक अचानक टूटा तारा।

नक्षत्रों की भाँति प्रीति में,
मरना जीना सीख रहा हूँ।

दीन हीन बन नाचे केकी,
व्याकुल मन प्यासा ललचाया।
तब कितनी भर पीर नीर में
आज उमड़ सावन घन आया।
सुधा सरिस जलधार गगन से,
अविरल जी भर भर बरसाया।

जलधर सा ही दृग-जल अपना।
मैं बरसाना सीख रहा हूँ।

कितना प्यार किया चन्दा को,
कभी न आया आसमान से।
सुनो चकोरी मुझे प्यार है,
चिर वियोग के अश्रुगान से।
मेरे आँसू सूख न जायँ,
बिलग रहा इसलिए भानु से।

सूर्य-चन्द्र सा मैं भी अब दिन-
रात बनाना सीख रहा हूँ।



सुधि के डोरे

याद उभरी आ रही है।

चाँद के मिस बादलों की ओट से प्रिय याद उभरी आ रही है।

प्रात की आशा-तरी भी डूबती है रात की गहरी नदी में,
किन्तु मन की साध अब भी ढूंढ़ती है प्रीति ही नेकी-बदी में।
मैं रहा चुनता सदा कंकड़ जगत में मोतियों के हार कहकर,
बादलों की भाँति सरगम स्वर सुनाये हैं हृदय में आग भरकर।

थाम लो आँचल उठाकर आँख की बरसात छितरी जा रही है।
याद उभरी आ रही है।

साँस का यौवन बिखर कर दिन-बदिन अब शृङ्खला सा टूटता है,
आँख का अनुराग रोता, सेज का सौभाग्य ज्यों ज्यों रूठता है।
क्यों तुम्हारी रूप-किरणें नित्य मेरी आँख का जल पी रही हैं,
साँवरे गोरे सुनहरे मीत, पावस का शरद मुँह सी रही हैं।

दूब की टहनी न छूना, ओस की सौगात बिखरी जा रही है।
याद उभरी आ रही है।

शरद शीतल, शिशिर व्याकुल भर गई हेमन्त सिहरन बाँसुरी में,
चल वसन्ती वायु स्वर्णिम भर गई रस रंग शतदल पाँखुरी में।
हर साँस में मीठी चुभन भर प्यास की ग्रीषम मुझे तरसा गया,
इस दग्ध चातक की तृषा पर विषभरा जल मेघ भी बरसा गया।

देख लो बेपीर! अब तो पीर की तस्वीर उतरी आ रही है।
याद उभरी आ रही है।

चन्द्रमा की राह पर यह कौन निर्मम काँच के टुकड़े बिछाता,
कौन नाटककार छिपकर श्वेत-काले रातदिन परदे गिराता।
खोजते दुख सुख गगन में आज भी सूरज कहाँ से आ रहे हैं,
रात की अर्थी उठाये देख लो सारे सितारे जा रहे हैं।

किन्तु फिर से अरुण ऊषा सी क्षितिज की रूह निखरी आ रही है।
याद उभरी आ रही है।

नियति का व्यंग

मैं अकेला चल रहा या और भी।

आज रेगिस्तान की इस तप्त भू पर मैं अकेला चल रहा या और भी।

प्यार पाकर स्वर्ग से भी मैं अपरिचित हो गया हूँ,
अर्चना की ज्योति में हे प्राण तुम सा हो गया हूँ।
चन्द्र की किरणें पकड़ कर शून्य नभ पर चढ़ रहा हूँ,
होश इतना है कि अब भी लक्ष्य पर मैं बढ़ रहा हूँ।

इस निशा में राह का विस्तार पग से मैं अकेला छल रहा या और भी।
मैं अकेला चल रहा या और भी।

व्यंग इस निष्ठुर समय का शीत जल भी तन जलाता,
प्राण प्यारा चन्द्रमा भी आग की लपटें गिराता।
इस हृदय में बर्छियों सी पीर यह कैसे छिपा लूँ,
पाँव धरती से बँधे हैं किस तरह नभ चीर डालूँ।

एक कथा मैं हो निरन्तर, सर झुकाने में तुम्हें असफल रहा, या और भी।
मैं अकेला चल रहा या और भी।

शीत खाकर मर गया मैं, आग देने तुम न आये,
रात ने बेहोश मुख पर ओसके छींटे लगाये।
एक क्षण में ज़िन्दगी, मुझमें तुम्हारा स्वप्न लाया,
किन्तु दौड़ा देख जल में, डूबती प्रिय ज्योति-छाया।

इस तरह मैं ही जलधि में पीठ के बल तैरता प्रतिपल रहा या और भी।
मैं अकेला चल रहा या और भी।

ढूँढ़ते आकाशवाले सब जलाये लालटेनें,
और मैं भी जा रहा था तम अगम में प्राण देने।
मिल गये तुमसे सभी पर रुक गया मैं प्रण-पुजारी,
नाम मुँह से भी न निकला आँख सपने ने उघारी।

इस तरह पहिली किरन में स्वप्न मेरा ही अकेला जल रहा या और भी।
मैं अकेला चल रहा या और भी।

प्रतिध्वनि

हर गान मेरा, प्राण की पहिचान है।
हर अश्रु मेरा, प्यार का ईमान है।

जब मेरु सा तन बँध गया लघु श्वास में,
प्रिय प्यार का मन भी बँधा विश्वास में।
है बन्द बिजली बादलों की बाँह में,
स्वर सात बन्दी एक कवि की आह में।
जब बादलों से भीगता आकाश है,
तब जागती मरु के हृदय की प्यास है।

हर प्यास प्रिय के पंथ की पहिचान है,
हर पंथ राही के हृदय का ज्ञान है।

है स्वाति जल से प्यार चातक का सुना,
पर क्या पता यह सत्य है या कल्पना।
हर कोकिला को रागिनी से प्रीति है,
या सर्वथा प्रिय बोलने की रीति है।
यह मानने को मैं तभी तैय्यार हूँ,
जब दीप कह दे मैं शलभ का प्यार हूँ।

हर एक प्रेमी, प्यार से नादान है,
हर लक्ष्य साधक के लिए भगवान है।

पतझार भी मधुमास भी हर डाल में,
दुर्भाग्य भी सौभाग्य भी हर काल में।
सुनसान से सुनसान भी आबाद है,
प्रिय मान लो आकाश का दिल चाँद है।
कुछ जीत भी कुछ हार भी संसार में,
कुछ राख भी कुछ आग भी अंगार में।

हर आग जलते रूप की पहिचान है,
हर राख बुझती आग का ईमान है।

मुरझाये फूल

कुछ तुमको भी है जग का भय,
कुछ मुझको भी लाचारी है।

निर्जन में भावुक मन मेरा,
सारे जग का दुख नाप रहा।
पश्चिम में तम जबड़े खोले,
रवि का मुख मण्डल काँप रहा।

कुछ तम को भी है विधि का भय,
कुछ रवि को भी लाचारी है।

जल की छाती पर पाँव धरे,
धीरे - धीरे जलयान चले।
भू का निर्धन आँगन भरने,
मोती बन-बन हिमवान गले।

कुछ शशि बेबश दानी मन से,
कुछ पृथ्वी को लाचारी है।

वृन्तों के कोमल तन तज कर,
झोंके में शिशु पल्लव टूटे।
पत्थर सी सूखी धरती से,
गोरे - गोरे अँकुर फूटे।

कुछ अंकुर हैं सहमे - सहमे,
कुछ धरती को लाचारी है।

अम्बर देखा करता धरती,
विरहिन धरती अकुलाती है।
मलयानिल का तन छेद - छेद,
सन्देश किरन दे जाती है।

कुछ मारुत के तन में सिहरन,
कुछ किरणों को लाचारी है।

चलते - चलते हर एक पथिक का,
पग यों ही रुक जाता है।
कंचन सा प्यारा - प्यारा तन,
अंगारों पर जल जाता है।

कुछ जीवन की दुर्बलता है,
कुछ मरघट की लाचारी है।



समर्पण

मैं चरणों में पलकें धर दूँ,
तुम अलकों पर अँचल धर दो।

जिसने रजकण में प्राण भरे,
उसने ही प्राण जगाया है।
दोनों हृद - तन्त्री में छवि ने,
अनुपम झङ्कार उठाया है।

मैं गीतों से सब जग भर दूँ,
तुम प्राणों में कुछ स्वर भर दो।

वैसे तो क्षण अनगिन जिनमें,
जीवन स्वच्छन्द लगा प्यारा।
वे दुर्लभ क्षण जिनमें मानस,
स्वीकार स्वयं कर ले कारा।

मैं बन्दी बन, स्वच्छन्द बनूँ,
तुम मन को कारागृह कर दो।

यदि फूलों की सुषमा चाहो,
सीखो पत्थर बन कर रहना।
यदि मानस की सीमा चाहो,
सीखो बन्धन बन कर रहना।

मैंने दो चिन्ह बनाये हैं,
जिसमें चाहो उँगली धर दो।

उच्छ्वास

तुम हो कच्चे घट माटी के,
जल कर पीड़ा पहिचानोगे।

छा जाता है जो जीवन में,
सहसा स्वर्णिम घटना बनकर।
अपना न भले ही बन पाये,
रह जाता है अपना बनकर।

मन से न कढ़ेगी छवि मुख की,
जब सुधि की चादर तानोगे।

मन में विस्मृति भी आ सकती,
तुमसे केवल इतना कहकर।
सम्भव न कहीं जिसका मिलना,
क्षण में मिलता सपना बनकर।

सपना अच्छा या जीवन यह,
या दोनों ही, कुछ मानोगे।

पाने वाले की प्रियतम से,
बस इतनी दूरी होती है।
पत्थर में स्वर पैदा होते,
जब पूजा पूरी होती है।

अमृत पीकर भी मर सकते,
जब विषमय जीवन जानोगे।

प्रेम विहंग

विषम इन प्राणों का व्यापार ।

हृदय में भरते थे नव प्राण,
कभी लहरों के चंचल बोल ।
देह डाली पर प्रेम - विहंग,
झूमते रहते बने हिंडोल ।

किन्तु अब ऐसा लगता देव,
स्वयं में मैं का है आधार ।

खेलती हँसती भव्य विलास,
कभी सुमनों से मेरी चाह।
खोजते थे नित मेरे नयन,
अगम सागर में प्रिय की राह।

किन्तु अब एक अश्रु के बीच,
देख पड़ता स्वर्णिम संसार।

मृदुल शशि चुम्बन की मनुहार,
उड़ा करता था मन अनजान।
तोड़ने नभ के प्यारे फूल,
अरे यौवन यह था तूफान।

किन्तु अब क्यों करता हृत्कंप,
मृत्यु - जीवन सब एकाकार।

अतृप्ति

सजल पलकें क्यों तृषित अधीर ?

अगम निष्प्रभ कर राहें पार,
क्षितिज पर टिक जाते दृग मौन।
दीखता कुहरीला घन पास,
अलस अलकों वाला सखि कौन ?

भरा करता जो मादक पीर।

चला आता क्यों मेरी ओर,
छोड़ मणिमय नीरव आकाश।

प्रात - छवि - दिनमणि - बाल - स्वरूप,
किसी का मंजुल मधुमय हास।

असह शर फेंक रहा तूणीर।

कसक - तरु - झिलमिल छाया देख,
विमल सुख - दुख की झांकी डाल।
साधना आँगन नयनों बीच,
खींचता है प्रतिहत बेहाल।

नयन से चित्रकार तसबीर।

विकल आहों सा कितना दीन,
विवश यह जीवन किसके हाथ।
नहीं दे पाता वह अनजान,
समर्पण का भी मेरे साथ।

अचल - सा कैसा वज्र शरीर।

अंगलता

राह शूल सी प्राण फूल सा,
रोको मत पथ पर चलने दो ।

आंखों के सांचे में ढल कर,
प्रतिमा जो बन गई हृदय में ।
नयन - वारि से युग युग धोना,
प्रीति, प्रतिष्ठा, सुख-दुख, भय में ।

उत्कंठा के मुख पर शत - शत,
अभी विरह-चुम्बन होने दो ।

अंगलता के मदिर भार से,
जब झुक जायेंगी यह पलकें ।
मद कल मलय पवन बन कर मैं,
सुलझाऊंगा उलझी अलकें ।

जब तक प्यास न सूखे मुख से,
मुख को प्यास प्यास रटने दो ।

विश्व-राग सुन जब प्राणों में,
रन्ध्र अनेकों बन जायेंगे ।
किसी गीत में सरगम बन कर,
मेरे प्राण समा जायेंगे ।

एक गीत भी जब तक सुख दे,
उर के रन्ध्र न प्रिय भरने दो ।

जबकि तुम्हारे पांव थकेंगे,
खोज खोज कर मन्दिर अपना ।
विथकित पग को गतिमय करने,
आ जाऊंगा बनकर सपना ।

लेकिन जब तक सांस सत्य है,
कुछ भी मत सपना बनने दो ।

पागल पुकार

मुझसे मिल लो मेरे साथी,
चाहे आज मरण ही बनकर ।

सोचा था अब मन के मेरे,
अन्तर्द्वन्द्व खतम हो आये ।
लेकिन देखा आज हृदय में,
सौ सौ दर्द नये उग आये ।

जबकि किसी कवि ने नौका पर,
बीच नदी में गाये यह स्वर,

"चलता है मेरी छाती पर,
कोई रूप चरण धर धर कर ।"

बुझती ज्योति भटकती उंगली,
लथ-पथ पांव दर्द से भारी ।
जैसे सान्ध्य समय प्राची में,
रवि की हो लाचार सवारी ।

ऐसे में सब के मन कहते,
करतल में कुन्तल गिर पड़ते,
कह उठता बेहोश पपीहा,
दिन काटे मैंने गिन गिन कर ।

अब विषाक्त हर छाया लगती,
हर त्रुटि को मैं सोच रहा हूँ ।
अपने हाथों अपना मस्तक,
अपना कंठ दबोच रहा हूँ ।

कर्मों के सर पर आरा धर,
कहता-फिरता हूँ मैं घर घर,
विद्या, बुद्धि, ज्ञान, सब मेरे,
तुम रह गये जहर बन बन कर ।

आस पास सब जगह मौत है,
यह डरावने शब्द सुआ के,
सुन सुन कर नजदीक डाल पर,
फटते जाते कान सुआ के।

अंग अंग साहस का डोला,
भैरव - स्वर में मुर्दा बोला,
क्या समाधि भी रौंद रहे हो,
गिरती है मिट्टी छन छन कर।

केशर के तार

वसन में चाहे जैसा रंग,
प्राण में अपना रंग भरो।

सिन्धु-वाणी सी अगम अथाह,
सजग सिन्दूर फिसलती राह।
सकल तन-मन की लाज बटोर,
चपल पलकों की कोर मरोर।

पवन सी चंचल अंचल फेंक,
एक पग में सौ स्वर्ग धरो।

कलो सेमल को चम्पक राग,
छिपा पंखुरियों बीच पराग।
अभी उलझे केशर के तार,
हथेली मल मुख बारम्बार।

छिटक वेणी-वर प्रणय-कपूर,
सुरभिमय सब संसार करो।

उनींदी नींद पीर अनजान,
अभी थोड़ी थोड़ी पहिचान।
बिना कुछ कहे चले संदेश,
प्रसूनों से धर अगणित वेष।

काँपती रात, सहमती सेज,
सजीले स्वर्णिम स्वप्न ढरो।

अजान पंथ

इधर धरा ज्वलित अनल, गगन विशाल है उधर,
अपार प्रेम पंथ में, बता पिया चलूँ किधर।

जिधर उमंग से भरी लचक लचक उमर चली,
नयन सने सनेह में अधर हँसे हँसी मिली।
किंवार खोल लाज के कुमार बोल चल पड़े,
विरह-मिलन प्रसून पर पराग दल मचल पड़े।
मराल सी चली पवन, पलक पलक उघर गई,
सिंदूर के लिये स्वयं अलक अलक बिखर गई।

बँधा सिंदूर माँग में, सुहाग पर न बँध सका,
सुहाग से भरी हुई, सुहागिनी नहीं मगर।

त्रिशूल से गड़े सदा अभाव रोज राह में,
अथाह सिन्धु घट गया कमी हुई न चाह में।
अनेक बिजलियाँ गिरीं, प्रणय-महल हिला नहीं,
मशाल सा जला हृदय शरीर पर जला नहीं।
न पंथ ही थका कभी, न पाँव ही रुके कहीं,
जहाँ नयन उलझ गये, पड़े मिले चरण वहीं।

संयोग कामना हृदय अनन्त तक लिए चला,
वियोग में जड़ी हुई, वियोगिनी नहीं मगर।

समुद्र के असंख्य बूँद आसमान चढ़ गये,
शरीर छोड़ प्राण भी हजार बार कढ़ गये।
सहस्र स्वर्ग भार से लगे शरीर के बिना।
असीम स्वर्ग से इसी लिए मनुष्य को घृणा।
समेट लाश आयु की सदैव आदमी चला,
कली कली मरण बँधा कि फूल डाल पर खिला।

विलास, हास - शोक में सभी बँधे बुरी तरह,
विलास - डोर में बँधी, विलासिनी नहीं मगर।

अजान रूप आज का छिपा नहीं विहान में,
सिंगार साज प्राण का शरीर के मकान में।
अनन्त प्राण एक साथ धूल है उठा रही,
अनेक एक रूप को कफ़न तले सुला रही।
मरन - सितार - तार यह पुकारता चला गया,
ज़मीन छोड़ सब गये, बुरा गया, भला गया।

नदी के पाँव बह रहे कगार धँस रहे उधर,
शरीर छोड़ दे तरी, विरह इधर मिलन उधर।

जादूगर बादल

पहिली बरषा के घुँघराले,
काले घन नभ में घिर आये ।

मन की गति से ज्यादा चंचल,
पावस तरुणी के संग बादल ।
किस विरहिन के अरमान जले,
उड़ उड़ काजल के गांव चले ।

या इन्द्र धनुष की मांग भरे,
प्रिय के काले कुन्तल छाये ।

रिमझिम होती बूँदा - बाँदी,
मैंने डर कर पलकें बांधी ।
प्यासी धरती का तन भरने,
या फिर से मेरा मन छलने ।

जल बूँदों के घुंघुर बांधे,
प्रिय के घायल पायल धाये ।

सुलगे प्राणों में आग जली,
नभ का उर छेद चली बिजली ।
या वस्त्र बिना गोरी नारी,
झट लाज भरी डुबकी मारी ।

या कंचन के घर की रानी,
बादल छल-बल से छल लाये ।

सन सन, सन सन पुरवा डोली,
भागी नटखट बादल टोली ।
सहमें प्राणों को प्राण मिले,
नयनों में जल के फूल खिले ।

अम्बर मन ही मन मुस्काया,
जादूगर बादल शरमाये ।

पथिक

चल बटोही साँस लेने में—
यहाँ गति छीण होती।

आज तक साथी मिले जो,
रुक गये कुछ दूर जाकर।
या पथिक की भावना खो,
सो गये पथ भूल, थक कर।

तू न ले जग से सलाहें,
राय देंगी मौन राहें।

चल अकेले, पूछने पर—
और भी मति क्षीण होती।

सिन्धु मथ डाला सही है,
किन्तु अब मानस - मथन कर।
छू चुका सीमा परिधि यदि,
केन्द्र में प्रतिमा सृजन कर।

भूल जा उल्लास गुञ्जन,
याद कर उच्छ्वास क्रन्दन,
क्योंकि दुख की व्यंजना में,
रागिनी की मीड़ होती।

मेदिनी अचला, चला सी,
चंचला सोलह कलह सी।
सिन्धु को सर पर उठाये,
देख बादल द्वार आये।

गा रहा गतिमय प्रभंजन,
तू शुरू कर गीत गर्जन,
स्वर अमर, प्रतिभा अमर,
कवि देह मरणाधीन होती।

कारागार

शून्य इस अन्तःकरण में,
और कुछ दिन पीर सह ले।

कुम्हला गये तेरे बहुत दिन बन्द कारागार में,
क्या याद होगा घर तुझे इस विश्व पारावार में।
नियति के कर मुक्ति भी दें तो कहाँ तू जायगा अब,

कीर पिंजर को हृदय से,
और कुछ दिन नीड़ कह ले।

'पूर्णता अभिशाप' कहकर बुलबुला हर फूटता है,
हिंद सागर जान्हवी की धार उल्टी फेंकता है।
खो न तू अस्तित्व सरि-सा, और कुछ दिन ज्योत्सना सा,
रेत, टीले, कंकरों में,
प्यार की तकदीर वह ले।

चेतना जागी कि मन से राग गिरते जा रहे हैं,
दृष्टि-पथ कहता कि साथी दूर बढ़ते जा रहे हैं।
सोचता हूं अब किसी से क्यों यहाँ संगति माँगं,
प्राण प्रण से बुद्धि मेरी,
हृदय का वह चीर गह ले।

फूल से कोमल दुखों का भार क्या जीवन उठाये ?
विवश सुख की कल्पना को हाथ क्या मानव बढ़ाये ?
दूब वाली ओस की दो-चार बूंदे सोचती हैं,
और कुछ क्षण अरुण ऊषा—
के सुनहले तीर सह ले।

बर्फ की चट्टान का मत्था किरन सहला रही है,
मेघमाला सान्ध्य-रवि को मुकुट सा पहिना रही है।
आ रही होगी कहीं से सुरमयी बरसात कोई,
और कुछ दिन दूर लहरों से,
नदी के तीर रह ले।

आश्रम-कन्या

नीर भरो री थोड़ा थोड़ा ।

वेत्रवती की चंचल धारा,
जतन-जतन से कलश डुबोना ।
नूपुर-रव को थाम सरलते !
घट कोमल कटि पर रख लेना ।

युग के बाद साथ जल पीता,
उड़ न जाय सारस का जोड़ा ।

प्यासे वृक्ष, लता पशु पंछी,
सबके तन की प्यास अछूती ।
तन से अधिक तृषित परछाईं,
जो पहले लहरों को छूती ।

नयन न देख तृषित हिरनों के,
नयन बनेंगे पथ का रोड़ा ।

आश्रम तट से बहुत दूर है,
दौड़ दौड़ कर मत चल चंचल !
टूट जायगी सिर की गागर,
कांटों से उलझेगा अंचल ।

उस गुलाब की चपल डाल ने,
तनिक उलझ यदि अंग मरोड़ा ।

प्रतिबिम्ब

उत्सुक लोचन रूप रंग के,
जीवन-बेलि सींच मधुरस से।

द्रुम वल्लरियों के झुरमुट में,
जब शशि छिपता था बेचारा।
एक साथ दोनों मन बींधे,
प्यार-बधिक ने वह शर मारा।

आहत मैं, पर बन्दी मन में,
प्यार-बधिक हो रहे विवश-से।

झाँक कुएँ के जल में पाया,
एक मनोरम छाया-दर्पण।
जिसमें दिखता निष्ठुर प्रियतम,
करता मुझको प्राण समर्पण।

"वह भी है छाया ही तेरी,"
कौन कह गया स्वर कर्कश से।

छिपने लगे विहँग नीड़ों में,
अस्ताचल ने बाँह पसारा।
पाल समेट लिए किरणों-के,
रवि-तरणी पा गई किनारा।

प्रणय-वञ्चिता चकवी बोली,
दूर हुई मैं प्रिय पग दस से।

भटक रहे हैं अनगिन सपने,
मंजुल अभिनय की विस्मृति में।
मुक्त केशिनी-छाँह न जाने,
कब मिल जाये अथ या इति में।

नखत चुक गये गिनते गिनते,
लगता सबके सब परवस से।

जलती छाया

मेरे असीम दृग - जल - दर्पण का,
कण कण बिखरा आंचल में ।

निर्बन्धमयी प्रतिमा लख कर,
मन रीझ गया था अपने से ।
जीवन की तन्द्रा में आये,
जब तुम भरमाये सपने-से ।

दिखला कर स्वर्ण प्रकाश नवल,
अब क्यों छिपते अस्ताचल में ।

रेशम पंखों सा हास रंग,
मेंहदी - युत करतल - हार कहाँ ?
यह ज्वालाओं का देश मिला,
शोले सोलह शृंगार जहाँ ।

बालू की भीत खड़ी कर दी,
किसने कैसे कोमल जल में ?

क्यों करता भीषण घोष पवन,
भूकम्प कम्प सुख स्वप्न मग्न ।
शत खण्ड खण्ड शशि हास रास,
आशा - लतिका-फल फूल भग्न ।

है कौन सफेदी डाल रहा,
सुन्दर आँखों के काजल में ।

तरुण सितार

जलाओ प्राण इस तरह प्राण,
लपट से निकलें स्वर्णिम गान।

थकी उँगली से ढीले तार,
नहीं भरते स्वर्णिम झंकार।
वक्ष पर रखकर कहता हाथ,
तोड़ दूँगा मैं तरुण सितार।

कहीं सुनकर भी मेरे गीत,
न जागे यदि सोये इन्सान।

क्षीण सांसों के घायल बोल,
बनाने होंगे भैरव राग।
भभक उठने को है बड़वाग्नि,
लगानी होगी जल में आग।

नित्य ही होने दो गृहदाह,
राख से उठ - उठ भागें प्राण।



आकर्षण

पतझर में कुछ आकर्षण है,
लौट - लौट जो मधुऋतु आये।

आकुल धरती से उड़ पंछी,
जब अम्बर के छोर न पाते।
औ ग्रीष्म के क्रोधानल से,
सरि, सागर, उपवन जल जाते।

तब भी कुछ तृण बच जाते हैं,
जिनके लिये श्याम घन छाये।

प्रिय - दर्शन के चिर अभाव में,
जब हर ओर धुँवा मँडराता।
पुस्तक, प्रकृति, ध्यान चिंतन में,
कुछ संगीत नहीं मिल पाता।

तब भी कुछ क्षण आ जाते हैं,
जिनमें स्वर्ग छोड़ स्वर धाये।

उलझन के रंग रात रंगी हैं,
सात तरह के सात दिवस हैं।
चन्द्रकला से नित्य नये दुख,
जब से प्राण हुए परवश हैं।

फिर भी कुछ जन इस दुनियाँ में,
जिनसे लिपट भूल दुख जाये

कुछ छवि है अम्बर के ऊपर,
रवि, शशि, नखत दरस हित जाते।
किन्तु धरणि पर भी कुछ ऐसा,
जिसके कारण वापिस आते।

कुछ धन है अवश्य जीवन में,
जिसके लिए मरण ललचाये।

अभियान

गति के चरण चरण प्रिय मुझको ,
क्षण भर भी विश्राम न लूँगा ।

भावों में मोती भर भर कर ,
सारा मानस-कोष लुटाया ।
पर दुनियाँ को मेरे ऊपर ,
जाने क्यों विश्वास न आया ।

प्यार छोड़ गीतों के बदले ,
हीरा मोती दाम न लूँगा ।

बोल अभागिन कोइलिया के,
अमृत के कण बोने वाले।
नित्य तृषा के अनगिन पर्वत,
चातक के स्वर ढोने वाले।

प्यासी प्यास पंथ के बदले,
कभी मिलन के याम न लूँगा।

वर्ण वर्ण मेरी कविता के,
नाविक बन बन कर आते हैं।
औ कल्पना-तरणि में पग रख,
पंथी पार उतर जाते हैं।

इस गतिमय धारा के बदले,
अब मृत तट का नाम न लूँगा।

पाँचों दीप महासागर नभ,
मेरे नयनों के गुलाम हैं।
एक बूँद आँसू में मेरे,
बन्दी जग के आठ धाम हैं।

इन भावुक घड़ियों के बदले,
मैं सुरपुर अभिराम न लूँगा।

जलते सपने

ताख में जलता दिया है देह में जलती जवानी,
मिट रहा ज्यों ज्यों समय त्यों त्यों अमिट अपनी कहानी।

आह प्राणों से निकल कर,
पथ किसी का ढूँढती है।
ज्वार में पहिचान की,
पतवार कर से छूटती है।

जल रहा ज्वालामुखी सा आज कुछ ऐसा हृदय में,
जगमगा कर कौंधती है आँख में धुँधली निशानी।

मूक शीशे के हृदय पर
टूटतीं किरणें बिखर कर।
एक सूरत बन रही है,
हर घड़ी मन में उमर भर।

देख यह विध्वंस मेरा दूसरों की क्या कहूँ मैं,
हँस रही मुझ पर स्वयं ही आज मेरी ज़िन्दगानी।

मृत्यु के पहले नयन में,
कुछ समय आया खुशी का।
जब कि फैली बाहुओं पर,
गिर पड़ा आँचल किसी का।

कष्ट सब जीवन-समर के, धुल गये उजले कफन में,
और जीना चाहता था, पर न पापिन मौत मानी।



बेला के फूल

आज नयन भर और देख लो क्षण भर की है बात,
फिर जाने यह देह हमारी दिन पाये या रात।

प्रिय मरने के बाद जगत में,
फिर फिर कर आवेंगी रातें।
जब परिचित दो चार मिलेंगे,
मुझ पर भी होवेंगी बातें।

वनवासिन सी सुनती रहना सबके व्यंगाघात।

फिर भी यदि हठवश वे पूछें,
मेरा तुमसे क्या नाता था।
अन्तिम क्षण भी क्षीण सांस से
गीत तुम्हारे क्यों गाता था।

तो पलकें ऊँची कर लेना बात रहे अज्ञात।

और अगर फिर भी कुछ पूछें,
तो केवल मुस्काते जाना।
औ समाधि तक मेरी आकर,
केशराशि बिखराते जाना।

कुछ बेला के फूल चूमकर छितरा देना पात।

हो सकता है समझ न पावें,
वे सब मूक प्रेम की भाषा।
तो आँचल से दीप बुझाकर,
कर देना जीवन परिभाषा।

अन्तर में सौ रवि की ज्वाला, मुख पर पिछली रात।

नयनों में नयनों की गति भर,
अधरों पर बिखरा देते थे।
कभी कभी उलझे केशों में,
छिपकर दुख बिसरा लेते थे।

केवल एक बार अधरों ने, की अधरों से बात।

प्रगति के स्वर

साथी उस पार उतरना है ।

छप छप चलती मेरी नइया,
बहकी बहकी सी पुरवइया ।
तूफान और घनघोर घटा,
भय बन बन आती तड़ित छटा ।

फिर भी रफ्तार मन्द कर दे,
मांझी दो हाथ बन्द कर दे,

थोड़ा गंगाजल भरना है ।

यह तप्त दुपहरी ग्रीषम की,
बलिहारी ऐसे मौसम की ।
यह गर्म रेत यह नग्न पांव,
मिलती न दिशा दिखते न गांव ।

फिर भी इतनी आशा भर कर,
चलते जाओ कुछ दूरी पर,

पानी का मीठा झरना है ।

सब को कमजोरी प्यारी है,
इस मन से दुनियाँ हारी है ।
देखो अमृतधारी मयंक,
धोता न कभी अपना कलंक ।

फिर भी कलंक के धोने में,
पृथ्वी के कोने कोने में,

किरणों की भांति बिखरना है ।

सब के कन्धों पर सिर धर लो,
सब से हिल मिल बाँहें भरलो ।
मन में यह भाव रहे न रहे,
कल कोई बात कहे न कहे ।

शीतल जल से आँखें भर लो,
कीचड़ से दो बातें कर लो।

कीचड़ में फूल उभरना है।

जब तक मिलता दाना पानी,
पंछी उड़ता जा मनमानी।
कुछ देर मौत के घर रहना;
कोई पूछे तो यह कहना।

जीवन का एक फैसला है,
पंछी का मौत घोंसला है,

उसमें यह जीवन धरना है।



हँफता सूरज

दिन जैसे जैसे ढलता है,
निशि के पल चलते आते हैं।

किसने नभ से फेंकी कौड़ी,
रजनी निज केश झिटक दौड़ी।
सूरज हँफता हँफता धाया,
जैसे कोई मन - बौराया।

यह संध्या एक शमा सी है,
दिनके पर जलते जाते हैं।

मन पंछी भूला भरमाया,
भू से उड़कर तरु पर आया।
आँधी आई तूफान नये,
सबके सब ही हैरान हुये।

मेरे समक्ष मेरे घर के,
सब तृण तृण उड़ते जाते हैं।

तोते के रंगवाली साड़ी,
बरसा वाला पहने ठाड़ी।
कहता है मेरा मन मानी,
लो आभूषण पहनो रानी।

असली चाँदी के गहने प्रिय,
जो यह दृग गढ़ते जाते हैं।

मेरे सब सुख ग़मगीन बने,
दुख के क्षण भी साथी न बने।
कैसे विश्वास करूँ किस पर,
जिनको पाला किस्मत कहकर।

वे मस्तक के काले अक्षर,
अब छिन छिन मिटते जाते हैं।

फूलों का भार

जो कुछ सुन्दर मेरे मन में,
सब न्यौछावर अवगुण्ठन में।

झूम झूम कर गिर गिर पड़तीं,
हरित लतायें छाया-पथ पर।
बाँह पकड़ किरणों की कहता,
कुहरा अलस नयन मद भर भर।

जो कुछ तम से रहित हृदय में,
बह जाये इस विधु चितवन में।

रूप - नदी की सरस धार में,
बह जा मेरे दुख के कण कण
जैसे फूलों से बोझिल हो,
दबता है काँटों का यौवन।

जो कुछ शूल सदृश यौवन में,
दब जाये पराग - सिंचन में।

मुस्कानों की बरसा बरसे,
पर्णकुटी की नव छाजन में।
जब तक तम का रूप हंस बन,
उड़ न चले इस गगनांगन में।

जो कुछ श्याम सरल तन मन में,
घुल मिल जाय नयन - अंजन में।



प्रलय ही किनारा

मिलन रागिनी पंथ से लौट जा तू,
विरह-वीन पर स्वर सधा है हमारा।

किसी भक्त ने देव की आरती - हित,
बड़े भाव से दीप मठ का जलाया।
'दूर हट' यह नहीं अर्चना प्रेम की,
कूद लौ में शलभ ने यती को बताया —

प्रणय के नगर में सफल प्रेमियों को,
जलन ही अधर और चुम्बन अङ्गारा।

दुखी एक वन में उठा हाथ बोला,
बना भाग्य फिर से दयामय मसीहा।
वहीं एक चट्टान पर सिर पटक कर,
हृदय - रक्त से लिख गया यह पपीहा —

जगत के सफर में सफल यात्री को,
प्रणय ही तरी औ प्रलय ही किनारा।

गया द्वार पर एक बालक भिखारी,
कहा आह भर, अन्न दे प्राण दानी।
तभी पास आ एक मज़दूर बूढ़ा,
बताने लगा निज व्यथायें पुरानी।

सुनो, दर - बदर भीख मैं माँगता पर,
मुझे बाहु की शक्ति ने ही उबारा।

विकल एक प्रेमी नदी के किनारे,
खड़ा सोचता तुम कहाँ ज्योति - बाला।
घड़ी एक में ट्रेन निकली वहीं से,
तिमिर चीरती फेंकती लौ - उजाला।

कहा ट्रेन ने यह बड़े मुक्त स्वर से,
'मुझे विश्व में आदमी ने सँवारा।'

ज्वार और प्यार

कल्पना में हैं पतन उत्थान दोनों,
गीत का आधार फिर भी एक है।

चन्द्रिका से रात बोली बात सचमुच ठीक है,
एक तारा चाँद के बिल्कुल खड़ा नज़दीक है।
किंतु ज्यों ही चन्द्रमा की ओर उसका पग बढ़ा,
बेबसी सी छा गई आकाश ने रोकर कहा —
'देवताओं की हुकूमत भी यहाँ मजबूर है,
दूर रहना ही हमारे राज का दस्तूर है।'

कह उठे सारे सितारे प्राण प्रिय से,
दूर रहना प्यार का अभिषेक है।

एक तारा और भी जो चाँद से मिलने चला,
बंधनों की बात सुन क्रोधित हुआ ज्यों चंचला।
चीखकर बोला कि बोलो दूर रह दुख क्यों सहूँ,
सोचता हूँ मैं धरा की गोद में जा सो रहूँ।
इसलिए नक्षत्र नभ से भूमि आया टूट कर,
'यह भ्रमण सारा निरर्थक' भूमि बोली रूठ कर।
धूलि से निर्माण जिसका साथ मेरे सो सके,
फूल का साथी भला अङ्गार कैसे हो सके।

मैं नहीं, निःस्तब्धता भी दे रही स्वर,
यह मिलन ब्रह्माण्ड में अविवेक है।

प्यार से सूनी धरा है प्यार से सूना गगन,
मैं कहाँ जाऊँ बता दे बावले मेरे नयन।
किंतु खोया प्यार फिर से पास लाना चाहता,
इसलिए दे राह मैं पाताल जाना चाहता।
मौन थी धरती इधर उस ओर तारा था खड़ा,
एक आँसू आँख से तत्काल यों ही गिर पड़ा।
फट गई छाती धरा की और तारा खो गया,
एक पल में एक आँसू एक सागर हो गया।

उस अमर क्षण की निशानी युग-युगों से,
चल रहा तूफान अब भी एक है।

देखकर टूटा सितारा चाँद रोया रात भर,
आसुओं की धार से ही भर गया है मानसर।
नित्य व्याकुल हो तभी से मीत प्यारा ढूँढता,
इसलिए यह चाँद जल में तैरता औ डूबता।
जब कभी वह चाँद प्यारा और वह पाताल तारा,
पड़ गये सम्मुख अचानक हिल गया संसार सारा।
इस तरह अनजान होता दो हृदय का प्यार है,
इसलिए ही सिन्धु में आता हमेशा ज्वार है।

मूक जल की मौन मन की दो तरंगें,
ज्वार औ प्रिय प्यार दोनों एक हैं।



अमृत या गरल

मैंने नहीं किसी से पूछा,
प्रेम कठिन है या कि सरल।

हर तरङ्ग में है मन बह ले,
आज सुरा पीने के पहिले,

मैंने नहीं–किसी से पूछा,
सुरा अमृत है या कि गरल।

नयनों में मस्ती बहती है,
मन्द मलय मुझसे कहती है,

कभी नहीं पूछा इस वन से,
शूल अधिक हैं या परिमल।

जीवन मैंने पहिचाना है,
कहती सरि बढ़ते जाना है,

जीते जी न कभी पूछूंगी,
पथ कठोर है या कोमल।

दर्पण का हृदय

प्रिय तुम्हारा प्रणय भी कितना महान,
प्यास बढ़कर बन गई है आसमान।

निर्जीव हो या जीव हो सबके लिए,
जीवन लुटाता चल रहा घर घर पवन।
मरुभूमि या उपवन हरे हर एक को,
जलदान करता जा रहा आकाश - घन।
बेमोल ही संसार को प्रतिक्षण यहाँ,
सुरभित किये है फूल का सुकुमार तन।

फूल का व्यक्तित्व भी कितना महान,
प्राण देकर कर रहा सौरभ प्रदान।

तिरासी

है तीर के आघात पर जग अनमना,
पर तीर को जो दुख हुआ किसने सुना।
है आग छूकर आदमी क्रोधित बहुत,
पर आग में कितनी जलन किसने गुना।
हर एक खुद में ही यहाँ उलझा हुआ,
दुख ग़ैर का प्रिय वस्त्र सा किसने बुना।

धन्य दर्पण के हृदय का आत्मज्ञान,
एक क्षण में वस्तु करता मूर्तिमान।

मासूम आग

याद मुझको आज भी धुँधली कहानी आ रही है।

सुन पड़ीं शव की सदायें, रो पड़ा मरघट विचारा,
बाँस की तखती तलक ले, कर गई दुनियाँ किनारा।
आग की लौ भी, कहूँ क्या ! सच, बड़ी मासूम होती,
दे जलाने का निमन्त्रण, दौड़कर मुख चूम लेती।

पर न जाने आग क्यों रँग आसमानी ला रही है।

बात कह उजड़े चमन की एक माली सो रहा है,
हो गये बेहोश पत्थर और पानी रो रहा है।
रूप-घेरा डाल तन दीवाल मन से बोलती है,
बन्दिशें हरदम हमारी साँस चलकर तोड़ती है।

देख लो राजा गया अब राजधानी जा रही है।

मुक्ति का वह लेख लिखकर आज बिजली कह गई है,
हो सजग इन्सान दुख की रात पिछली रह गई है।
उस क्षितिज के पार से आलोक सारा आ रहा है,
शून्य नभ में रूप का पहिला सितारा गा रहा है।

पायलों से फूटकर रुनझुन रवानी आ रही है।

कोयल के बोल

करुण मत गाओ प्राण - सितार,
वसन्ती चलती मदिर बयार।

आँख की श्यामा पुतली पर,
नींद की परियाँ सोती हैं।
रूप के राजा आये हैं,
बरौनी पूजा करती हैं।

ठिठुक मत अधरों के बाज़ार,
मोल लूँगा मैं एक दुलार।

पत्तियों के अधरों को चूम,
रात भय टेसू सोये हैं।
चुम्बनों के माते रसकण,
लजीले गात भिगोये हैं।

रेशमी आँचल में भर प्यार,
बहा जाता है तरुण खुमार।

किरण के पंछी बैठे हैं,
ओस की कोमल डाली में।
हवा इठलाती गाती है,
फूल झूमे हर ताली में।

रसिक पिक कहती वारम्बार,
द्वार से लौट न जाय बहार।

प्रवासी अधर प्यार से दूर,
नयन सुख पर सुख पाते हैं।
कहीं अधरों के होते नयन,
बताते जो कि छिपाते हैं।

न सुनता है कोई ऋतुराज,
मूक अधरों की तरुण पुकार।

भ्रान्ति

मैं मिलन के गीत गाऊँ या विरह से प्यार कर लूँ।

प्यास मैंने भी पिया है,
जो वियोगी की क्रिया है।
बाहुओं में बाहु डाले,
इक संयोगी के संभाले।

अब कहो उजड़े हृदय में एक या संसार भर लूँ।

एक दिन निकली सवारी,
राजसी पोशाक धारी।
एक दिन भटका पुजारी,
दर बदर बनकर भिखारी।
राख मस्तक में लपेटूँ या तिलक शृङ्गार कर लूँ।

रश्मि लाता जब सवेरा,
चौंक पड़ता है अंधेरा।
और फिर दोनों लिपटकर,
नित्य रोते अश्रु भर भर।
अब कहो बिछुड़े नयन में ज्योति या अंधियार भर लूँ।

हर तरफ फैली मही है,
किन्तु यह अपनी नहीं है।
इसलिए देवत्व पुजता,
आदमी का शीश झुकता।
पूज लूँ पत्थर सभी-सा, मूर्ति या साकार कर लूँ।

गो कि सबका एक जग है,
राह पर सबकी अलग है।
गा रहे कुछ गीत गुन गुन,
रो रहे कुछ शीश धुन धुन।
खुद बदल जाऊँ यहाँ या पथ नया तैयार कर लूँ।

प्रेम-दीप

कभी भूलकर भी किसी का सहारा,
न मैं चाहता हूँ न मैंने लिया है।

प्रणय - चिह्न जो छोड़कर मैं चलूँगा,
उन्हें जो पढ़ेगा मुझे क्या कहेगा?
यही लक्ष्य मेरे हृदय का रहा है,
यही लक्ष्य हर एक पग का रहेगा।

न वे आ रहे हैं न मैं जा सकूँगा,
विवशते! तुम्हें जन्म मैंने दिया है।

नियम श्रृङ्खला में बँधा सोचता हूँ,
सदा लक्ष्य मेरा असीमित रहेगा।
इसीसे उठाता मुसीबत अनेकों,
कि दुर्भाग्य का नाम जीवित रहेगा।

फहरती गगन में तड़ित जय-पताका,
निराकार तूफान मेरा हिया है।

नहीं बूँद को सिर झुकाता पपीहा,
अमर प्यास उसकी सजग संगिनी है।
स्वयं प्राण की पीर उन्मादिनी है,
स्वयं प्राण की पीर उन्मुक्तिनी है।

सुना ? कह गया फिर पपीहा 'पिया है'।
'पिया कुछ नहीं प्यास दिल की पिया है'।

विहग-कलरवों ने सुबह फिर बुला ली,
उठे हाथ रवि को नमस्कार करने।
सुनहली किरण यों पड़ी गिर चरण पर,
गिरे ज्यों यती विश्व का प्यार भरने।

बताया कि रवि से बहुत तेज धारी,
तुम्हारे हृदय में प्रणय का दिया है।

स्वर्ण-मृग

भोले प्राण फँस गये कैसे,
विषम प्रेम की राजनीति में।

स्वर्ण - मृगा सा रूप मनोरम,
मेरे नयन राम धनुधर से।
बींध ले गये मृग को लेकिन,
सुधि - वैदेही खोई घर से।

तन - मन जले लंक - से निशि - दिन,
क्षण क्षण बीते हार जीत में।

सुख - दुख के दो झरने मन में,
क्रम क्रम से बहते रहते हैं।
दोनों का ही जल खारा है,
दृग सबसे कहते रहते हैं।

इन दोनों का उद्गम मिलता,
बार बार झूठी प्रतीत में।

ऐसी लौ चमकी मस्तक में,
नाम लिया जब उस अस्थिर का।
जैसे छिपती रवि किरणों से,
चमका हो त्रिशूल मन्दिर का।

सब कुछ शुद्ध, चमत्कृत पावन,
हो जाता है हृदय - प्रीति में।

चरण-चिह्न

उठाई चरण - धूलि कितने करों ने,
चरण - चिह्न फिर भी न देखे तुम्हारे।

किरण - जाल में सृष्टि की सम्पदा भर;
कहीं ले न भागे चतुर अंशु माली।
न जाने कहाँ कौन सी कोठरी में;
धवल चारु मणियाँ गगन ने छिपा ली।

गिराये तिमिर - पट रही यामिनी, पर
मधुर चित्र फिर भी न मैंने उतारे।

उधर कालिमा चीर पौ फट रही है,
इधर प्यार की शृङ्खला छुट रही है।
वहाँ एक पंछी 'पिया' रट रहा है,
यहाँ छोड़ तट धार जब हट रही है।

अगम धार में एक पाषाण गिरकर,
बहा जा रहा है लहर के सहारे।

किसी के लिए यह सुबह हो रही है,
किसी के लिए शाम का ही अंधेरा।
नहीं सत्य का रूप भी थिर यहाँ क्या?
उड़ा ले गयी वायु खग का बसेरा।

महासिन्धु में भी नहीं मिल सके जो,
कहाँ मिल सकेंगे नदी के किनारे।

कुसुम कुंतला

आज अनुराग भरी होली।

अम्बर - ओट लिए पिचकारी,
अयुत रश्मि रँग घोल, प्रणव ने।
तन्द्रिल प्रकृति प्रिया पर मारी,

मली मुख अधरासव रोली।
आज अनुराग भरी होली।

ऊर्ध्व नयन जन जन मन रंजन,
रति अभिलषित चकित चुम्बन से।
कर रोपतीं प्रतनु विधु चितवन,

हँसी, हँस श्लथ लथ पथ बोलीं।
आज अनुराग भरी होली।

जाग पड़ा जग तम अपसारित,
लगती मन को लाज सुनो पिय।
तुमसे होता प्राण पराजित,

व्यथा से भरो न अब झोली।
आज अनुराग भरी होली।

छवि-प्रहार

उजला हो जाये अंधकार ।
यदि प्रिय से छिपकर मिलने का,
मिट जाये रवि का मन - विकार ।
सबके मन में जग उठे प्यार ।
यदि कोई रूप निठुर बनकर,
कर सके हृदय में छवि - प्रहार ।
सुख - दामिनि चमके बार बार ।
यदि धन बन मन न्यौछावर कर,
सबको जीवन का तार तार ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
सात	५ वीं	कभ	कभी
दस	२ री	नखून	नाखून
अठारह	५ वीं	गिर	गिरे
उन्नीस	६ वीं	त्वप्न	स्वप्न
बीस	१४ वीं	भर भर	मर मर
चौबीस	७ वीं	मीत	गीत
उन्तालीस	४ वीं	प्राण	प्यार
चवालीस	११ वीं	करता	कहता
पैंतालीस	४ वीं	कुहरीला	कुहरीले
साठ	१२ वीं	कलह	कला
बासठ	८ वीं	मांग	माँगूं
चौसठ	५ वीं	तृशित	तृषित
उनहत्तर	६ वीं	तरण	तरुण
अट्ठानवे	२ री	भय	भर

शिञ्जिनी पर सम्मतियाँ

—:o:—

राष्ट्रकवि—श्री सोहनलाल द्विवेदी

हिन्दी काव्याकाश के नवनक्षत्रों में कवि श्री शिवबहादुर सिंह की प्रतिभा अपूर्व है। अपनी शैली के वे अन्यतम कवि हैं। 'शिञ्जिनी' उनकी मार्मिक कविताओं का अनुपम प्रकाशन है।

प्रकाशन से पूर्व मैंने आद्योपान्त इस कृति को पढ़ा है और अलौकिक आनन्द का अनुभव किया है।

जिन्हें शिवबहादुर जी के मधुर कंठ से उनकी कविताओं के सुनने का अवसर मिला है वे इस प्रकाशन को पाकर अवश्य ही बड़े प्रसन्न होंगे।

मैं शिवबहादुर सिंह जी को उदीयमान महान कवि के रूप में देखता हूँ। निस्सन्देह उनकी इस कृति से राष्ट्र-भाषा के भण्डार की श्रीवृद्धि होगी।

बिन्दकी
फतेहपुर

सोहनलाल द्विवेदी

श्री उदयशंकर भट्ट (आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली)

'शिञ्जिनी' कविता-संग्रह पढ़ा। पढ़कर मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कवितायें काफी सुन्दर और परिमार्जित हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि 'शिञ्जिनी' का कवि उत्तरोत्तर आलोकित होगा तथा अपने सौन्दर्य से पाठक को मुग्ध कर सकेगा।

३१—७—५३ **उदयशंकर भट्ट**

डा० रांगेय राघव एम. ए., पी-एच. डी.

(रामनगर आगरा)

'शिञ्जिनी' की कवितायें अत्यन्त सुन्दर हैं। इनमें जो सजीव कल्पनायें हैं वही इनका प्राण हैं। आगे चलकर गाम्भीर्य ही अधिक आयेगा। भविष्य उज्ज्वल आशाओं के साथ कवि की प्रतीक्षा कर रहा है।

रांगेय राघव

—:०:—

पं० भगवती प्रसाद बाजपेयी

'शिञ्जिनी' में कवि की आत्मानुभूति का स्वर ही प्रमुख है कल्पना का गौण। यही कारण है कि जीवन के चढ़ाव-उतार में प्रकृति और समाज ने उसके साथ जैसी निकटता, ममता किंवा निर्मम जड़ता का परिचय दिया है, समय समय पर वैसी ही मर्म वाणी उसके अन्तःकरण से अनायास फूट पड़ी है। यथा—

मैं पूजा का थाल सम्हालूं—तुम पूजा की छवि निहार लो।
मैं अपनी वीणा से खेलूं—तुम तन-मन की सुधि विसार लो॥

अथवा

याद की राहों में रख चरण मीत तुम रोना नहीं कभी।

किंतु 'शिंजिनी' का कवि जीवन की भौतिक गति-विधि का ही व्याख्याता और गायक नहीं; उसकी अन्तर्दृष्टि प्राणावेगमय रहस्यों की उन आविष्ट घड़ियों का भी उद्‌घाटन करती रहती है, जिन्हें अन्तरिक्ष-वासी के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। यथा—

जिस तरह उस चाँद के विघटन-बढ़न की
पुस्तिका को लिख रहे दिन रात हैं।
उस तरह जीवन तुम्हारे भेद की बातें
अन्धेरे में पड़ी अज्ञात हैं।

निदान प्रत्येक अवस्था में 'शिंजिनी' का कवि चेतन है। उसके गीले स्वरों में यदि आँसुओं के गान हैं, तो जीवन के मांगलिक आह्वान

भी है। उसकी पृष्ठभूमि भले ही छायावादी हो, किंतु उसकी संकेतात्मक प्रेरणाओं में यथार्थवादी स्वर है। यथा—

छप-छप चलती मेरी नैया—चहकी-चहकी सी पुरवैया।
तूफ़ान और घनघोर घटा—भय बन बन आती तड़ित छटा।
फिर भी रफ्तार मन्द कर दे,
माझी दो हाथ बन्द कर दे,
थोड़ा गंगाजल भरना है।
साथी उस पार उतरना है।

और कवि की प्रथम कृति की दृष्टि से देखा जाय, तो कहना पड़ेगा यह उसकी सफलता का ही शुभारम्भ है।

देव नगर
कानपुर

भगवती प्रसाद बाजपेयी